बाल-कालिदास



लेखक

पण्डित रूपनारायण पाण्डेय

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

बालसखा पुस्तकमाला—पुस्तक २४वीं

बाल-कालिदास

या

कालिदास की कहावतें

लेखक

पण्डित रूपनारायण पाण्डेय

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९२६

संशोधित संस्करण] [मूल्य ।=)

Published by
K Mittra,
at The Indian Press, Ltd ,
Allahabad

Printed by
A Bose,
at The Indian Press, Ltd ,
Benares-Branch

विषय-सूची

कालिदास का परिचय

कविकुल-गुरु कालिदास कौन थे? कहाँ के रहनेवाले थे? कब हुए? इन सब बातों का ठीक निश्चय करने के लिए कालिदास के किसी ग्रन्थ मे कुछ सामान नहीं। इतने बडे महाकवि का स्वार्थत्याग तो देखिए, उसने कहीं पर अपना परिचय या सन्-संवत् कुछ नहीं दिया। कालिदास सचमुच स्वाभाविक महाकवि थे। उनके बनाये अभिज्ञान-शाकुन्तल नाटक का अँगरेज़ी मे जो अनुवाद हुआ उस अँगरेज़ी अनुवाद के भी जर्मन भाषा मे किये गये अनुवाद को पढकर जर्मनी के कवि 'गेटे' ने कहा था कि "अगर कोई वसन्त के फूल और शरद ऋतु के फल पाने की अभिलाषा करे, अगर कोई मन को अपनी ओर खींचनेवाली, अर्थात् वशीकरण की, वस्तु देखना चाहे, अगर कोई प्रसन्नता और प्रफुल्लता से मिलना चाहे, अगर कोई स्वर्ग और पृथ्वी को एक जगह देखने की इच्छा रक्खे, तो, वह कालिदास के अभिज्ञान-शाकुन्तल को पढे।" कालिदास वास्तव मे सरस्वती के अनन्य उपासक थे। संस्कृत भाषा के देवभाषा नाम को यथार्थ बनानेवाले कवियों मे कालिदास का नाम सबसे पहले नहीं

तो वाल्मीकि और व्यास के बाद ही लिया जा सकता है। कालिदास के बनाये हुए इतने ग्रन्थ प्रचलित हैं—(१) रघुवंश, (२) मेघदूत, (३) कुमारसम्भव, (४) विक्रमोर्वशी, (५) मालविकाग्निमित्र, (६) अभिज्ञान-शाकुन्तल, (७) श्रुतबोध, (८) ऋतुसंहार, (९) नलोदय। इनके सिवा ज्योतिर्विदाभरण, स्मृतिचन्द्रिका आदि और भी कई ग्रन्थ कालिदास के नाम से प्रचलित हैं। किन्तु उनको बहुत लोग कालिदासकृत नहीं मानते।

कालिदास की कविता मे यह विशेषता है कि वह सरस और सरल ऐसी होती है कि सुनते ही समझ में आ जाती है। कालिदास की उपमा बड़ी अनूठी होती है। चाहे जिधर से—चाहे जिस तरह से देखिए, वह चुभ जाती है। कालिदास की कविता को जो कोई पढ़ेगा उसे कहना ही पड़ेगा कि शेक्सपियर के सिवा कालिदास के पास आसन पानेवाला और कवि पृथ्वी पर नहीं हुआ। शेक्सपियर मनुष्य के हृदय के भावों को प्रकट करने मे अगर बढ़ा-चढ़ा है तो कालिदास भी वर्णन करने मे उससे बहुत बढ़ कर हैं। कालिदास की कविता मे भाव तो अच्छे होते ही हैं लेकिन भाषा भी ऐसी होती है कि कानों मे अमृत की वर्षा करती है। उनकी उपमाएँ और वर्णन तो चमत्कार से भरे पड़े हैं ही, लेकिन उनमे बहुत सी विज्ञान (साइंस) की बातें भी उनकी बढ़ी-चढ़ी जानकारी की साक्षी दे रही हैं। गुरुत्वाकर्षण-शक्ति (Gravitation), चीज़ों के कड़े होने का

कारण, जलकण के संयोग से इन्द्रधनुष की उत्पत्ति; धुआँ, पानी, हवा और गर्मी के मेल से बादल का बनना; चन्द्रमा और सूर्य्य के आकर्षण से समुद्र में ज्वार-भाटा का आना, सूर्य्य की किरणों से उत्पन्न चन्द्रमा का प्रकाश, पृथ्वी की परछाईं पड़ने से सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण का होना, पृथ्वी की परछाई का चन्द्रमा मे कलङ्क-कालिमा-रूप से दिखाई पड़ना, गर्भ की दशा मे माता-पिता जो सोचते-विचारते या करते हैं वैसा ही पुत्र होता है—इत्यादि विज्ञान की बातें कालिदास के ग्रन्थों में भरी पड़ी हैं। जब इन बातों का कालिदास ने समय-समय पर अपनी कविता में उल्लेख किया है तब यह मानना ही पड़ेगा कि उन्हे इन बातों का पूरा-पूरा ज्ञान था। इन बातों के सिवा कालिदास को भूगोल का भी ज्ञान था। उन्होंने मेघदूत में पर्वतो, नदियों और देशों का बड़ा विशद और सुन्दर वर्णन किया है। रघुवंश मे भी रघु की दिग्विजययात्रा के प्रसंग मे फ़ारिस और चीन आदि देशों का अच्छा और ठीक-ठीक वर्णन पाया जाता है।

इतना सब होने पर भी कालिदासजी बड़े ही नम्र थे। उनमें अभिमान का लेश भी न था। उनका यह गुण बालकों के बड़े काम का है। महाकवि कालिदास रघुवश के आरम्भ में लिखते हैं—

क्व सूर्यप्रभवो वंश. क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥

मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।
प्रांशुलभ्ये फले मोहादुद्बाहुरिव वामनः ॥

अर्थात् कहाँ यह सूर्य से उत्पन्न वंश ! और कहाँ मेरी थोड़ी पूँजीवाली बुद्धि ! सच तो यों है कि मोहवश मैं डोंगी से समुद्र पार करना चाहता हूँ। मैं मन्दमति, कवियों के यश की चाह मे, वैसे ही हँसा जाऊँगा जैसे कोई बौना आदमी लम्बे आदमी के पाने लायक ऊँचे फल को तोड़ने के लिए उचकता हो।

कालिदास किस समय हुए, इस बारे मे लोगों की जुदी-जुदी राय है। कोई उनको ईसा की पाँचवीं सदी मे मानता है, कोई छठी सदी में मानता है और कोई पहली सदी मे मानता है। लेकिन उनका पहली सदी मे होना ही बहुत सम्भव है। क्योंकि यह बात सिद्ध है कि वह विक्रमादित्य महाराज की, जिनका संवत् चलता है, सभा में थे। विक्रमादित्य प्रथम ईसा की पहली सदी के भी एक सौ वर्ष पूर्व थे। इस हिसाब से कालिदास ईसा के सौ वर्ष पहले के ठहरते हैं।

कालिदास कौन थे, इस विषय मे कहावत प्रसिद्ध है कि शारदानन्दन नाम के एक राजा की कन्या विद्यावती बड़ी ही पण्डिता थी। बड़े-बड़े पण्डित उससे शास्त्रार्थ मे परास्त हो गये। पण्डितों ने मिलकर सलाह की कि इस राजकन्या का विवाह किसी महामूर्ख के साथ कराना चाहिए,

क्योंकि यह हम लोगों का अपमान करती है। पण्डितों ने मूर्ख की खोज मे फिरते-फिरते एक जगह देखा कि एक चरवाहा वृक्ष पर चढ़ा हुआ जिस डाल पर खड़ा था उसी को काट रहा था। पण्डितों ने सोचा कि इससे बढ़कर मूर्ख कौन होगा ? यह नहीं सोचता कि डाल के साथ ही आप भी पृथ्वी पर गिर पड़ेगा। पण्डितों ने किसी तरह राज़ी करके उस मूर्ख को राजसभा मे उपस्थित किया और कहा कि यह बड़े भारी पण्डित और हमारे गुरु हैं। राजकुमारी से शास्त्रार्थ करने आये हैं। मगर यह मूकशास्त्रार्थ करेंगे, कुछ दिनों के लिए इन्होंने मौनव्रत धारण कर लिया है। राजकन्या शास्त्रार्थ के लिए राज़ी हो गई। राजकन्या ने एक उँगली उठाई; चरवाहे ने दो उँगलियाँ उठाईं। राजकुमारी का मतलब यह था कि ईश्वर एक है। चरवाहे ने समझा कि वह एक आँख फोड़ने को कह रही है। उसने दो उँगलियाँ दिखाईं कि मैं तुम्हारी दोनों आँखें फोड दूँगा। राजकुमारी ने समझा कि वह कह रहा है कि ईश्वर एक नहीं, प्रकृति-पुरुष दो हैं। राजकुमारी ने तीन उँगलियाँ उठाईं। उसका मतलब यह था कि माया के तीन गुणों से सृष्टि हुई है। चरवाहे ने समझा कि यह भी मारने का इशारा है, उसने थप्पड़ दिखाया। राजकुमारी ने समझा, वह कहता है कि तीन गुण नहीं, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश—इन पाँच तत्त्वो से सारी सृष्टि है। इस प्रकार विचार मे राजकन्या

परास्त हुई और चरवाहा जीत गया। प्रतिज्ञा के अनुसार विद्यावती को उसी मूर्ख से ब्याह करना पड़ा। विद्यावती के महल में चरवाहा गया। इतने मे महल के पास ऊँट बोला। विद्यावती ने मूर्ख से पूछा—कस्य शब्दमेतत् ? (किस की यह आवाज़ है ?), मूर्ख बोला 'उष्ट'। विद्या-वती ने समझा सुनने मे भूल हुई। फिर पूछा। अबकी मूर्खराज बोले 'उट्र'। बात छिपी नहीं रही। शुद्ध उष्ट्र शब्द न कह सकने से मूर्ख की मूर्खता खुल गई। विद्यावती दुःख के मारे बेहोश हो गई। मूर्ख चरवाहा भी लज्जित होकर महल से चल दिया।

सरस्वती की आराधना और जी लगाकर विद्याभ्यास करने से वही मूर्ख कुछ दिन मे महाकवि कालिदास हो गया और फिर लौटकर विद्यावती के पास आया। विद्यावती ने किवाड़ न खोलकर पूछा—अस्ति कश्चिद्वाग्विशेषः ? (अर्थात् वाणी मे कुछ विशेषता है ?) कालिदास ने इस वाक्य के तीन शब्द लेकर तीन महाकाव्य बनाये। 'अस्ति' से आरम्भ करके 'कुमारसम्भव' बनाया। 'कश्चित्' से आरम्भ करके 'मेघदूत' बनाया, और 'वाक्' से आरम्भ करके 'रघुवंश' बनाया। उसके बाद विद्यावती बहुत प्रसन्न हुई। कालिदास विक्रमादित्य की सभा के प्रधान रत्न समझे जाने लगे।

कालिदास की इस कथा मे हम दो बातें ऐसी पाते हैं जो बालकों के बड़े काम की हैं। १—यह कि चाहे जितना

मूर्ख मोटी समझ का मनुष्य हो, वह मन लगाकर मेहनत करे तो कुछ ही दिनों मे भारी पण्डित बन सकता है। २—यह कि अपढ़ आदमी का कोई आदर नहीं करता, स्वय अपनी स्त्री भी अनादर की दृष्टि से देखती है। इसलिए मन लगाकर पढ़ना-लिखना चाहिए। इनके सिवा कालिदास के चरित्र से तीसरी शिक्षा जो मिलती है उसकी ओर हम ऊपर इशारा कर ही आये हैं। अर्थात् बड़ी भारी योग्यता प्राप्त करके भी नम्रता गुण को न छोड़ना चाहिए।

रूपनारायण पाण्डेय

वक्तव्य

यह बतलाने की तो कोई जरूरत ही नहीं कि बालकों का हृदय मोम की तरह सुकुमार होता है—उस पर जो छाप पड़ जाती है वह अन्त तक नहीं मिटती। उस पर किसी भाव या विचार को अंकित कर देना बहुत ही सहज हुआ करता है। बालक लोग बचपन में जो याद कर लेते हैं वह उन्हे कभी नहीं भूलता। यह भी देखा गया है कि लड़कपन में मनुष्य जो देखता या पढ़ता है उसी के अनुसार कार्य करने की प्रवृत्ति उसमे प्रबल होती है। यही विचारकर मैंने महाकवि कालिदास के सब ग्रन्थों से उनकी चुनी हुई उत्तम कहावतों का संग्रह कर यह पुस्तक बालकों के आगे उपस्थित की है। इसकी सब कहावतें अनमोल रत्न है। उनमे सामाजिक, नैतिक और प्राकृतिक 'सत्यों' का बड़ी खूबी के साथ वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ को जो बालक पढ़ेंगे उनकी न केवल अच्छे कामो की ओर रुचि ही होगी, वरन् वे थोड़े ही परिश्रम मे बहुत सा लौकिक ज्ञान प्राप्त कर लेंगे। इसके सिवा वे जिस सभा मे इसमे की कोई समया-

नुकूल उक्ति कह देंगे वहाँ लोग उनकी प्रशंसा किये बिना न रह सकेंगे।

इस संग्रह का पठन-पाठन प्रचलित होने से एक लाभ यह भी होगा कि वे ही बालक बड़े होने पर महाकवि की सारी ग्रन्थावली पढ़ने का प्रयत्न अवश्य करेंगे, और उससे उनकी प्रतिभा तथा विद्याबुद्धि का विकास होना अवश्यम्भावी है।

इस संग्रह को बालकों के लिए उपयोगी बनाने में कोई कसर नहीं रक्खी गई है। हर एक कहावत के नीचे सरल भाषा में उस कहावत का सारांश भी विस्तार के साथ लिख दिया गया है, जिसे पढ़कर बालक आसानी से सब मतलब समझ लेंगे, और यह भी जान जायँगे कि किस मौक़े के लिए कौन कहावत है।

कहने को तो यह संग्रह बालकों के लिए किया गया है, लेकिन इससे बड़े और सयाने भी लाभ उठा सकते हैं। जो महाशय संस्कृत भाषा नहीं जानते वे इस संग्रह को पढ़कर कालिदास की अमृत-मधुर कविता का रस कुछ-कुछ पा सकेंगे। इन कहावतों को कण्ठस्थ कर लेने से मनुष्य सहज ही सभाचतुर बन सकेगा।

मुझे पूर्ण आशा है कि कम से कम हिन्दी को अपनी मातृभाषा समझकर गौरव का अनुभव करनेवाले सज्जन

तो अवश्य ही इस पुस्तक की एक-एक प्रति ख़रीदकर अपने बालकों के हाथ में दे देंगे। रहे सयाने लोग, उनसे भी मैं अनुरोध करता हूँ कि वे अवश्य इस पुस्तक को ख़रीदकर कविवर कालिदास की कविता का रसास्वादन करें।

विनीत

रूपनारायण पाण्डेय

बाल-कालिदास



रघुवंश

प्रथम सर्ग

(१)

हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा ॥ १० ॥

सोना खोटा है या खरा, इसका निर्णय आग में तपने से ही होता है ॥ १० ॥

तात्पर्य यह कि किसी आदमी या वस्तु के अच्छे या बुरे होने का निर्णय कठोर परीक्षा से ही होता है।

(२)

सन्ततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्म्मणे ॥ ६९ ॥

शुद्ध वंश (घराने) की सन्तान, इस लोक और परलोक, दोनों लोकों में कल्याण का कारण होती है ॥ ६९ ॥

तात्पर्य यह कि जो असल बाप से पैदा है वह औलाद, इस लोक में भी अपने बाप-दादे का नाम बढ़ाती है और

परलोक में भी श्राद्ध आदि करके उन्हें (बाप-दादों को) प्रसन्न रखती है ।

(३)

प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः ॥ ७९ ॥

जो पूजने योग्य हैं उनकी पूजा न करने से मङ्गललाभ में रुकावट पड़ती है ॥ ७९ ॥

तात्पर्य यह कि जो लोग मङ्गल की कामना रखते हों उन्हें पूजनीय पुरुष का कभी अनादर न करना चाहिए ।

द्वितीय सर्ग

(४)

न पादपोन्मूलनशक्तिरंहः
शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य ॥ ३४ ॥

वायु का वेग यद्यपि बड़े-बड़े वृक्षों को उखाड़कर फेंक सकता है, मगर पहाड़ से उसका कुछ वश नहीं चलता ॥ ३४ ॥

तात्पर्य यह कि चाहे कोई कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, परन्तु जो उससे अधिक शक्तिवाला है उसका वह कुछ नहीं बना-बिगाड़ सकता ।

(५)

शस्त्रेण रक्ष्यं यदशक्यरक्षं
न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति ॥ ४० ॥

जिसकी रक्षा करने का भार अपने ऊपर है उसकी रक्षा अगर शस्त्र से न की जा सके तो वह शस्त्रधारियों के लिए निन्दा की बात नहीं हो सकती ॥ ४० ॥

(६)

महीतलस्पर्शनमात्रभिन्न
मृद्धं हि राज्यम् पदमैन्द्रमाहुः ॥ ५० ॥

समृद्ध (भरा-पूरा) राज्य इन्द्रपद के समान ही कहलाता है। अन्तर केवल यही है कि वह पृथ्वी पर होता है ॥ ५० ॥

(७)

क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः
क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः ।
राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः
प्राणैरुपक्रोशमलीमसैर्वा ॥ ५३ ॥

शस्त्र के घाव, अथवा विपत्ति से जो निर्बलों को बचावे उसी को 'क्षत्र' कहते हैं। 'क्षत्र' शब्द का यही अर्थ जगत् में प्रसिद्ध है। जो क्षत्र (क्षत्रिय) इस (अर्थ) के विपरीत आचरण करता है, अर्थात् निर्बलों को विपत्ति से नहीं बचाता, उसका राज्य, या निन्दा-मलिन जीवन, किस काम का ? अर्थात् उसने अपने कर्त्तव्य का पालन न करके अगर राज्य-भोग किया ही, अथवा बहुत दिनों तक वह जिया ही तो उससे क्या ? उसका वह निन्दित राज्यभोग और कलङ्कित जीवन वृथा है ! ॥ ५३ ॥

(८)

स्थातुं नियोक्तुर्न हि शक्यमग्रे
विनाश्य रक्ष्यं स्वयमक्षतेन ॥ ५६ ॥

जिस चीज़ की रखवाली का भार अपने ऊपर है उसको (अपने आगे ही) नष्ट कराकर सेवक, आप बेदाग़ शरीर लेकर, स्वामी के आगे नहीं जा सकता ॥ ५६ ॥

(९)

सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहुः * * * ॥ ५८ ॥

पण्डितों या सज्जनों का कहना है कि बातचीत होते ही (विद्वानों में) परस्पर एक प्रकार का सम्बन्ध (मित्रता) हो जाता है ॥ ५८ ॥

तृतीय सर्ग

(१०)

क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति ॥ २९ ॥

अच्छे काम में किया गया परिश्रम अवश्य ही सफल होता है ॥ २९ ॥

(११)

पथः श्रुतेर्दर्शयितार ईश्वराः
मलीमसामाददते न पद्धतिम् ॥ ४६ ॥

सर्वसाधारण को वेदोक्त मार्ग दिखलानेवाले समर्थ पुरुष कभी मैले मन (नीच विचार) वालोंकी राह पर नहीं चलते ॥ ४६ ॥

अर्थात् जिनको साधारण लोग अपना आदर्श मानते हैं वे महापुरुष कभी बुरे काम नहीं करते ।

(१२)

यशस्तु रक्ष्यं परतो यशोधनै * * * ॥ ४८ ॥

जिनका यश ही सर्वस्व है उन्हें शत्रुओं से अपने यश की सर्वदा रक्षा करनी चाहिए ॥ ४८ ॥

अर्थात् हमेशा इससे सावधान रहना चाहिए कि शत्रु लोग झूठी निन्दा फैलाकर बदनाम करने का अवसर न पा सकें ।

(१३)

पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते ॥ ६२ ॥

मनुष्य के गुण सब जगह अपने पद को प्राप्त कर लेते हैं ॥ ६२ ॥

अर्थात् गुणी आदमी जहाँ जाता है वहीं उसकी प्रतिष्ठा होती है ।

चतुर्थ सर्ग

(१४)

प्रणिपातप्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम् ॥ ६४ ॥

नम्रता ही महापुरुषों के क्रोध को शान्त करने का सहज उपाय है ॥ ६४ ॥

(१५)

आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव ॥ ८६ ॥

बादलों की तरह सज्जनों का 'लेना' औरों को देने ही के लिए होता है ॥ ८६ ॥

अर्थात् बादल जिस तरह वर्षा करने के लिए ही समुद्र से जल लेते हैं वैसे सज्जन लोग भी दूसरों (दीन-दुखियों) को देने के लिए ही किसी से कुछ लेते (या माँगते) हैं; अपने लिए नहीं।

पञ्चम सर्ग

(१६)

सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः

कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा ॥ १३ ॥

सूर्य के तपते रहने पर (भी) अन्धकार कैसे लोगों के देखने में बाधा डाल सकता है ? ॥ १३ ॥

तात्पर्य यह है कि प्रतापशाली राजा के रहते प्रजा को किसी तरह का कष्ट नहीं होता।

(१७)

पर्य्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः
कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः ॥ १६ ॥

पारी पारी करके देवता लोगों के पी जाने से (क्योंकि चन्द्रमा अमृतमय है, और अमृत ही देवता लोगों का भोजन है) जो चन्द्रमा की कलाएँ घटती हैं, वह उनका घटना बढ़ने की अपेक्षा सराहनीय है ॥ १६ ॥

तात्पर्य यह कि अपनी जातिवालों का दुःख मिटाने में होनेवाली दरिद्रता अमीरी से कहीं बढ़कर है।

(१८)

* * * निर्गलिताम्बुगर्भम्
शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि ॥ १७ ॥

पानी की वर्षा करके ख़ाली हो गये शरद् ऋतु के बादल को चातक भी (पानी के लिए) नहीं दिक़ करता ॥ १७ ॥

अर्थात् दान करने से दरिद्रावस्था को प्राप्त दानी मनुष्य को, समझदार लोग, आप अत्यन्त दरिद्र होकर भी, माँग-माँगकर पीड़ा नहीं पहुँचाते।

(१९)

उष्णत्वमग्न्यातपसंप्रयोगात्
शैत्यं हि यत् सा प्रकृतिर्जलस्य ॥ २४ ॥

आग या घाम लगने से पानी भले ही गर्म हो जाय, किन्तु उसका स्वभाव ठण्डापन ही है ॥ ५४ ॥

अर्थात् बड़े लोगों का स्वभाव शान्त रहना ही है। यदि किसी कारण कभी उनको क्रोध आता भी है तो वह बहुत देर तक नहीं ठहरता; वे शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं।

षष्ठ सर्ग

(२०)

नक्षत्रताराग्रहसङ्कुलाऽपि
ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः ॥ २२ ॥

नक्षत्र, तारागण और ग्रहों के भरे रहने पर भी चन्द्रमा से ही रात उजियाली होती है ॥ २२ ॥

अर्थात् छोटे-छोटे राजा, ज़मींदार और रईसों के रहते भी सम्राट् से ही पृथ्वी सनाथ होती है।

(२१)

* * * भिन्नरुचिर्हि लोकः ॥ ३० ॥

हर एक आदमी की रुचि एक दूसरे से भिन्न हुआ करती है ॥ ३० ॥

(२२)

न हि प्रफुल्लं सहकारमेत्य
वृक्षान्तरं काङ्क्षति षट्पदाली ॥ ६९ ॥

ख़ूब फूले हुए आम के पेड़ को पाकर फिर भ्रमरों के झुण्ड दूसरे वृक्ष पर जाना नहीं चाहते ॥ ६९ ॥

तात्पर्य यह कि यथेष्ट (काफ़ी) आश्रय को पाकर फिर कोई अन्य आश्रय की इच्छा नहीं करता ।

(२३)

रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन ॥ ७९ ॥

मणि और काञ्चन (सुवर्ण) का संयोग हो ॥ ७९ ॥

अर्थात् योग्य का सम्बन्ध योग्य से ही अच्छा और उचित होता है, सब लोग ऐसे ही सम्बन्ध को पसन्द करते हैं ।

सप्तम सर्ग

(२४)

मनो हि जन्मान्तरसङ्गतिज्ञम् ॥ १५ ॥

मनुष्य का मन पूर्वजन्म के सम्बन्ध को सहज ही जान लेता है ॥ १५ ॥

तात्पर्य यह कि अपना मन जिस किसी को देखकर अकारण स्नेह करने लगे उससे अवश्य ही पूर्वजन्म का कोई सम्बन्ध है—ऐसा समझना चाहिए ।

अष्टम सर्ग

(२५)

प्रतिकारविधानमायुषः
सति शेषे हि फलाय कल्पते ॥ ४० ॥

आयु (ज़िन्दगी) अगर कुछ शेष होती है तभी दवा आदि उपाय कारगर होते हैं ॥ ४० ॥

अर्थात् अगर ज़िन्दगी नहीं है तो लाख दवा-दारू और दौड़-धूप करो, फल कुछ नहीं होता।

(२६)

अभितप्तमयोऽपि मार्दवं
भजते कैव कथा शरीरिषु ॥ ४३ ॥

जब इतना कड़ा लोहा भी आँच से गल जाता है तब शरीरधारी मनुष्य की तो कोई बात ही नहीं है ॥ ४३ ॥

अर्थात् कड़े से कड़े हृदय का आदमी भी विपत्ति की आँच में अधीर हो उठता है।

(२७)

विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेत्
अमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥ ४६ ॥

ईश्वर की इच्छा से कहीं विष भी अमृत का काम कर जाता है, और कहीं अमृत भी विष बन जाता है ॥ ४६ ॥

अर्थात् ईश्वर की इच्छा से कहीं बुराई में भलाई और कहीं भलाई मे बुराई पैदा हो जाती है।

(२८)

धिगिमां देहभृतामसारताम् ॥ ५१ ॥

देहधारियों की ऐसी असारता (अभी हैं, घड़ी भर में मर गये) को धिक्कार है ! ॥ ५१ ॥

(२९)

वसुमत्या हि नृपा कलत्रिणः ॥ ८३ ॥

भू-पति (राजा) लोगों की स्त्री पृथ्वी ही है ॥ ८३ ॥

तात्पर्य यह कि राजा लोगों को अपनी स्त्री से भी बढ़कर पृथ्वी के पालन या रक्षा का ध्यान रखना चाहिए।

(३०)

परलोकजुषां स्वकर्मभिः
गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम् ॥ ८५ ॥

परलोक जानेवाले जीवों की गतियाँ, उनके कर्मों के अनुसार, भिन्न-भिन्न मार्गों में हुआ करती हैं ॥ ८५ ॥

(३१)

स्वजनाश्रु किलातिसन्ततं
दहति प्रेतमिति प्रचक्षते ॥ ८६ ॥

लोग कहते हैं कि अत्यन्त दुःख से विलाप कर रहे स्वजनों के आँसू प्रेत (मृतक) को जलाते हैं ॥ ८६ ॥

(३२)

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां
विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः ॥
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन्
यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ ॥ ८७ ॥

पण्डितों का कहना है कि मरना ही शरीरधारियों की प्रकृति (उनके लिए स्वाभाविक) है, और जीवित रहना ही विकृति (अस्वाभाविक) है। घड़ी भर भी इस संसार में साँस लेना (जीते रहना) ग़नीमत समझना चाहिए ॥ ८७ ॥

तात्पर्य यह कि हर घड़ी मौत सिर पर सवार है। किसी का अचानक मर जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं, बल्कि जीवित रहना ही विचित्र है।

(३३)

अवगच्छति मूढचेतनः
प्रियनाशं हृदि शल्यमर्पितम् ॥
स्थिरधीस्तु तदेव मन्यते
कुशलद्वारतया समुद्धृतम् ॥ ८८ ॥

जो लोग नासमझ (मोहमुग्ध) हैं वे ही किसी प्रिय जन के मरण को हृदय में लगनेवाली कटारी समझते हैं। किन्तु जो लोग ज्ञानी महापुरुष हैं वे उसी (प्रियजन-वियोग) को कल्याण का द्वार खुलना मानते हैं ॥ ८८ ॥

अर्थात् साधारण लोग ही आत्मीयवियोग मे रोते और सिर पटकते हैं। किन्तु जो लोग मृत्यु के तत्त्व को जानते हैं वे उससे विचलित नहीं होते।

(३४)

स्वशरीरशरीरिणावपि
श्रुतसंयोगविपर्ययौ यदा ॥
विरहः किमिवानुतापयेद्
वद बाह्यैर्विषयैर्विपश्चितम् ॥ ८६ ॥

जब अपने शरीर और शरीर मे स्थित आत्मा का ही परस्पर संयोग और वियोग होते देखा जाता है, तब बतलाओ, विद्वान् लोग पुत्र-स्त्री आदि बाहरी विषयो के वियोग में क्यों शोक करें? ॥ ८६ ॥

मतलब यह कि जब अपना ही शरीर बने रहने का कोई ठिकाना नहीं—अपनी ही जिन्दगी का कोई भरोसा नहीं, तब औरो के न रहने या मर जाने का ही शोक क्या?

(३५)

द्रुमसानुमतां किमन्तरं
यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः ॥ ९० ॥

यदि वायु के वेग से वृक्ष और पहाड़ दोनों ही विचलित हो उठें तो फिर उनमे अन्तर ही क्या रहा? ॥ ९० ॥

मतलब यह कि विषयवासना और दुःख, शोक आदि के घात-प्रतिघात से साधारण लोग ही हिल उठते हैं, बड़े लोग नहीं।

नवम सर्ग

(३६)

अपथे पदमर्पयन्ति हि
श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः ॥ ७४ ॥

कभी-कभी ज्ञानी लोग भी रजोगुण (वासना) से (ज्ञान-) -दृष्टि रुँध जाने पर कुमार्ग मे पैर रख देते हैं ॥ ७४ ॥

(३७)

कृष्यां दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो
बीजप्ररोहजननीं ज्वलन. करोति ॥ ८० ॥

खेत में लगी हुई आग धरती को जलाकर भी उसकी उपजाऊ शक्ति को बढ़ाती है ॥ ८० ॥

तात्पर्य यह कि बड़े लोगों का दिया हुआ दण्ड उस समय कड़ा जान पड़ने पर भी अन्त को अच्छा फल करता है।

दशम सर्ग

(३८)

अव्याक्षेपो भविष्यन्त्याः
कार्य्यसिद्धेर्हि लक्षणम् ॥ ६ ॥

किसी काम मे किसी रुकावट का न पड़ना उस काम की सिद्धि का सच्चा लक्षण है ॥ ६ ॥

(३९)

स्वयमेव हि वातोऽग्ने:
सारथ्यं प्रतिपद्यते ॥ ४० ॥

हवा आप ही अग्नि की सहायता करती है ॥ ४० ॥

मतलब यह कि सच्चे मित्रों से कहना नहीं पड़ता; वे आप ही सहायता करते हैं।

एकादश सर्ग

(४०)

तेजसा हि न वयः समीक्ष्यते ॥ १ ॥

तेजस्वी पुरुषों की अवस्था नहीं देखी जाती ॥ १ ॥

मतलब यह कि जो होनहार या प्रतापी हैं वे छुटपन से ही अपना चमत्कार दिखाने लगते हैं।

(४१)

किं महोरगविसर्पिविक्रमो
राजिलेषु गरुड: प्रवर्तते ॥ २७ ॥

बड़े-बड़े विषधारी नागों पर झपटनेवाला गरुड़ पनिया (पानी के) साँप पर वार नहीं करता ॥ २७ ॥

मतलब यह कि जो लोग पराक्रमी हैं वे बराबरीवाले शत्रु से ही भिड़ते हैं, अपने से छोटों पर हमला नहीं करते।

(४२)

सद्य एव सुकृतां हि पच्यते
कल्पवृक्षफलधर्मि काङ्क्षितम् ॥ ५० ॥

पुण्यात्मा लोगों के मनोरथ कल्पवृक्ष की तरह शीघ्र फलते हैं ॥ ५० ॥

(४३)

पावकस्य महिमा स गण्यते
कक्षवज्ज्वलति सागरेऽपि य. ॥ ७५ ॥

अग्नि की महिमा यही है कि वह सूखी घास के समान सागर के जल मे भी जलता है ॥ ७५ ॥

तात्पर्य यह कि सच्ची शक्ति रखनेवाला आदमी साधारण शत्रु की तरह प्रबल शत्रु को भी परास्त कर सकता है।

(४४)

खातमूलमनिलो नदीरयै.
पातयत्यपि मृदुस्तटद्रुमम् ॥ ७६ ॥

नदी की लहरों से जिसकी जड़ कट गई है उस किनारे पर के पेड़ को हलकी हवा भी गिरा देती है ॥ ७६ ॥

तात्पर्य यह कि अन्य कारणों से दुर्बल हो रहे शत्रु को बहुत ही सहज में जीता जा सकता है।

(४५)

केवलोऽपि सुभगो नवाम्बुदः
किं पुनस्त्रिदशचापलाञ्छित. ॥ ८० ॥

नवीन मेघ-माला एक तो यों ही बहुत भली मालूम पड़ती है, दूसरे अगर उसमें इन्द्र-धनुष भी हो तो फिर उसकी शोभा का क्या कहना है ॥ ८० ॥

तात्पर्य यह कि एक स्वाभाविक सुन्दर वस्तु से अगर दूसरी भी मनोहर वस्तु मिल जाती है तो फिर मणिकाञ्चन-संयोग हो जाता है।

(४६)

निर्जितेषु तरसा तरस्विनां
शत्रुषु प्रणतिरेव कीर्तये ॥ ८६ ॥

अपने पराक्रम से जीते गये शत्रु से नम्र व्यवहार करना ही शूर-वीरों के लिए गौरव की बात है ॥ ८६ ॥

द्वादश सर्ग

(४७)

काले खलु समारब्धाः
फलं बध्नन्ति नीतयः ॥ ६६ ॥

समय पर जिसका प्रयोग किया जाता है वही नीति (पॉलिसी) सफल होती है ॥ ६९ ॥

चतुर्दश सर्ग

(४८)

अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थात्
यशोधनानां हि यशो गरीय. ॥ ३५ ॥

जो लोग यशोधन (यश को ही सर्वस्व समझनेवाले) हैं, उन्हें, सांसारिक सुखभोग की सामग्री की कौन कहे, अपने शरीर से भी अधिक यश प्यारा होता है ॥ ३५ ॥

(४६)

छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वे-
नारोपिता शुद्धिमत· प्रजाभिः ॥ ४० ॥

संसार के लोगों ने पृथ्वी की छाया को भी निर्मल चन्द्रमा का कलङ्क मान रक्खा है ॥ ४० ॥

मतलब यह कि सर्वथा शुद्ध लोगों के लिए भी संसार की बदनामी से बचना कठिन है।

(५०)

अमर्षणः शोणित-काङ्क्षया किं
पदा स्पृशन्तं दशति द्विजिह्वः ॥ ४१ ॥

असहनशील सर्प क्या रुधिर पीने की इच्छा से पैर से कुचलनेवाले को काटता है ? ॥ ४१ ॥

मतलब यह कि तेजस्वी लोग, किसी लाभ के लिए नहीं, वरन् अपने अपमान का बदला लेने के लिए, शत्रु या अपमान करनेवाले पर आक्रमण करते हैं।

(५१)

आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया ॥ ४६ ॥

गुरु या बड़ों की आज्ञा को बिना सोचे-विचारे मान लेना चाहिए ॥ ४६ ॥

पञ्चदश सर्ग

(५२)

धर्मसंरक्षणार्थाय
प्रवृत्तिर्भुवि शार्ङ्गिणः ॥ ४ ॥

धर्म की रक्षा करने के लिए ही पृथ्वी पर भगवान् का अवतार होता है ॥ ४ ॥

(५३)

जयो रन्ध्रप्रहारिणाम् ॥ १७ ॥

जो लोग कोई छिद्र पाकर उस मौक़े पर चोट मारते हैं वे अवश्य अपने शत्रु पर जय पाते हैं ॥ १७ ॥

षोडश सर्ग

(५४)

प्रह्वेष्वनिर्बन्धरुषो हि सन्त ॥ ८० ॥

सज्जनों का क्रोध नम्र मनुष्य पर अधिक समय तक नहीं रहता ॥ ८० ॥

सप्तदश सर्ग

(२५)

। वयोरूपविभूतीनामेकैकं मदकारणम् ॥

* * * ॥ ४३ ॥

जवानी, सुन्दरता और ऐश्वर्य, इनमें से हर एक में मनुष्य को मतवाला बना देने की शक्ति है ॥ ४३ ॥

(२६)

कातर्यं केवला नीतिः
शौर्यं श्वापदचेष्टितम् ॥ ४७ ॥

कोरी नीति (चाहे कोई दबाता ही चला जाय, मगर आप भलमंसी के मारे चुपचाप लातें खाते जायँ) कायरपन है, और कोरी बहादुरी (कोई बोलता ही नहीं, मगर हम उसे मारने को तैयार हैं) पशुओं का काम या लक्षण है ॥ ४७ ॥

(२७)

न हि सिंहो गजास्कन्दी
भयाद्गिरिगुहाशयः ॥ ५२ ॥

हाथी का शिकार करनेवाला शेर किसी भय के मारे पहाड़ की कन्दराओं में नहीं रहता ; उसका यह स्वभाव ही है ॥ ५२ ॥

तात्पर्य यह कि वीर लोग भय के मारे लड़ाई को नहीं टाल जाते, बिना किसी के छेड़ किये न बोलना उनका स्वभाव ही होता है ।

(५८)

वृद्धौ नदीमुखेनैव
प्रस्थानं लवणाम्भसः ॥ ५४ ॥

बाढ़ के समय भी समुद्र अपनी मर्यादा (हद) को नहीं छोड़ता (या उमड़ नहीं पड़ता), बल्कि जो नदियाँ उसको जल देती हैं उन्हीं मे वह (उसका जल) गमन करता है ॥ ५४ ॥

तात्पर्य यह कि बड़े और गम्भीर लोग बढ़ती होने पर मर्यादा को नहीं छोड़ते, अपनी ही राह पर चलते हैं।

(५९)

समीरणसहायोऽपि
नाम्भःप्रार्थी दवानलः ॥ ५६ ॥

वायु के सहायक (अनुकूल) होने पर भी दावानल कभी पानी के पास नहीं जाता ॥ ५६ ॥

तात्पर्य यह कि प्रबल सहायक पाकर भी अपने से प्रबल शत्रु से भिड़ना उचित नहीं।

(६०)

अम्बुगर्भो हि जीमूत
चातकैरभिनन्द्यते ॥ ६० ॥

चातक पक्षी पानी-भरे मेघ का ही अभिनन्दन करते हैं ॥ ६० ॥

तात्पर्य यह कि समृद्धिशाली मनुष्य का ही प्रार्थी लोग आदर करते हैं।

(६१)

जयश्रीर्वीरगामिनी ॥ ६९ ॥

जयलक्ष्मी वीर को ही पसन्द करती है ॥ ६९ ॥

(६२)

प्रवृद्धौ हीयते चन्द्रः
समुद्रोऽपि तथाविधः ॥ ७१ ॥

पूर्ण वृद्धि होते ही चन्द्रमा घटने लगता है; समुद्र में भी 'ज्वार' के बाद ही 'भाटा' शुरू होता है ॥ ७१ ॥

तात्पर्य यह कि पूर्ण उन्नति के बाद अवनति का आरम्भ होना प्रकृति (Nature) का नियम ही है।

अष्टादश सर्ग

(६३)

सकृद्विविग्नानपि हि प्रयुक्तं
माधुर्यमीष्टे हरिणान् ग्रहीतुम् ॥ १३ ॥

डरे हुए मृग भी मधुर गीत से पकड़े जा सकते हैं ॥ १३ ॥

तात्पर्य यह कि मीठी बोली से भड़के हुए लोग भी क़ाबू में किये जा सकते हैं।

(६४)

* * * सुखोपरोधि
वृत्त हि राज्ञामुपरुद्धवृत्तम् ॥ १८ ॥

सुख मे बाधा डालनेवाले राजकाज के बन्धन में राजा लोगों की दशा कैदियों की ऐसी रहती है ॥ १८ ॥

तात्पर्य यह कि राजा लोगों को घड़ी भर के लिए भी चैन नहीं, राजकाज की उलझन में वे कैदी की तरह चिन्तित रहते हैं।

(६५)

दृष्टो हि वृण्वन् कलभप्रमाणो-
ऽप्याशा पुरोवातमवाप्य मेघ ॥ ३८ ॥

छोटा सा बादल का टुकड़ा भी पुरवाई हवा पाकर सारे आकाश को छा लेता है—ऐसा देखा जाता है ॥ ३८ ॥

मतलब यह कि राजा छोटी उमर का होने पर भी राजसिंहासन को पाकर सम्पूर्ण राज्य का शासन कर सकता है।

ऊनविंश सर्ग

(६६)

स्वादुभिस्तु विषयैर्हृतस्ततो-
दुःखमिन्द्रियगणो निवार्य्यते ॥ ४६ ॥

मधुर स्वादिष्ट विषयों की ओर झुकी हुई इन्द्रियों को उधर से फिराना बहुत ही कठिन होता है ॥ ४६ ॥

कुमारसम्भव

प्रथम सर्ग

(६७)

एको हि दोषो गुणसन्निपाते
निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥ ३ ॥

चन्द्रमा की किरणों में जैसे उसका कलङ्क छिप जाता है वैसे ही बहुत से गुणों में मनुष्य का एक दोष छिप जाता है ॥ ३ ॥

(६८)

क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने
ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव ॥ १२ ॥

क्षुद्र (ओछे हृदय का) आदमी भी अगर शरणागत होता है तो उस पर महात्मा लोग वैसी ही ममता करने लगते हैं जैसी कि सज्जनों से ॥ १२ ॥

(६९)

अनन्तपुष्पस्य मधोर्हि चूते
द्विरेफमाला सविशेषसङ्गा ॥ २७ ॥

वसन्त ऋतु मे और-और फूलों के रहते भी, भौंरों के झुण्ड, केवल आम की मञ्जरी से ही जाकर लिपटते हैं ॥ २७ ॥

मतलब यह कि संसार में अनेक लोग हैं, लेकिन जिस पर जिसका पूर्वानुराग होता है उसी को वह चाहता है।

(७०)

ऋते कृशानोर्न हि मन्त्रपूत-
मर्हन्ति तेजांस्यपराणि हव्यम् ॥ ५१ ॥

अग्नि के सिवा अन्य (सुवर्ण आदि) चमकीले पदार्थ मन्त्र से पवित्र आहुति को नहीं पा सकते ॥ ५१ ॥

मतलब यह कि केवल आकार से नहीं, वरन् गुणों से ही प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ।

(७१)

अभ्यर्थनाभङ्गभयेन साधु
र्माध्यस्थमिष्टेऽप्यवलम्बतेऽर्थे ॥ ५२ ॥

साधु लोग, इस भय से कहीं प्रार्थना निष्फल न हो, अपनी इष्ट वस्तु पर भी चाह नहीं प्रकट करते ॥ ५२ ॥

(७२)

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते
येषां न चेतांसि त एव धीराः ॥ ५९ ॥

विकार (चित्त चलायमान) होने के सामान वर्तमान होने पर भी जिनके मन मे विकार नहीं आता वे ही धीर कहलाते हैं ॥ ५९ ॥

तात्पर्य यह कि बुराई के सामान जुटे रहने पर भी जो बुराई की तरफ़ नहीं झुकता वही सच्चा सच्चरित्र है ।

द्वितीय सर्ग

(७३)

शाम्येत्प्रत्यपकारेण
नोपकारेण दुर्जन ॥ ४० ॥

दुर्जन लोग बुराई के बदले बुराई करने से ही शान्त रहते हैं; बुराई के बदले भलाई करने से नहीं ॥ ४० ॥

(७४)

विषवृक्षोऽपि संवर्द्ध्य
स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् ॥ ५५ ॥

विषवृक्ष को भी अपने हाथ से लगाकर—बढ़ाकर—फिर काटना उचित नहीं ॥ ५५ ॥

तात्पर्य यह कि जिसको आश्रय दे, वह चाहे जैसा अपकारी (बुराई करनेवाला) निकले, अपने हाथ से उसकी जड़ में कुल्हाड़ी चलाना, सज्जनों की दृष्टि में, ठीक नहीं।

तृतीय सर्ग

(७५)

प्रयोजनापेक्षितया प्रभूणां
प्रायश्चलं गौरवमाश्रितेषु ॥ १ ॥

प्रभु लोग प्रायः अपने प्रयोजन से अपने आश्रित जनों को गौरव दिया करते हैं, अतएव स्वामियों के द्वारा किया गया सेवकों का ऐसा आदर स्थिर नहीं होता ॥ १ ॥

(७६)

व्यादिश्यते भूधरतामवेक्ष्य
कृष्णेन देहोद्वहनाय शेषः ॥ १३ ॥

पृथ्वी का भार उठाने की शक्ति देखकर ही नारायण ने शेषनाग को निज-शरीर-वहन करने का भार दिया है ॥१३॥

तात्पर्य यह कि मालिक लोग जाने-बूझे आदमी को ही किसी विशेष कार्य का भार देते हैं।

(७७)

अप्यप्रसिद्धं यशसे हि पुंसा-
मनन्यसाधारणमेव कर्म ॥ १४ ॥

जो काम असाधारण होता है वह प्रसिद्ध न होने पर भी पुरुषों को अवश्य यशस्वी बनाता है ॥ १९ ॥

तात्पर्य यह कि प्रसिद्धि की पर्वा न करके शक्तिशाली लोगों को बड़े काम करने चाहिएँ, तत्काल ही न सही, परन्तु किसी न किसी समय उस कार्य के लिए उनको सुयश अवश्य मिलता है।

(७८)

समीरणो नोदयिता भवेति
व्यादिश्यते केन हुताशनस्य ॥ २१ ॥

अग्नि की सहायता करने के लिए वायु से कौन कहता है ? ॥ २१ ॥

तात्पर्य यह कि सच्चे मित्र से सहायता करने के लिए कहना ही नहीं पड़ता; वह आप ही मदद के लिए खड़ा हो जाता है।

(७९)

प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां
पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः ॥ २८ ॥

प्रायः एक ही पुरुष में सब गुणों का समावेश करने की प्रवृत्ति विधाता में नहीं पाई जाती ॥ २८ ॥

अर्थात् ब्रह्मा की सृष्टि में कोई भी ऐसा नहीं जिसमें सभी गुण हों।

(८०)

आत्मेश्वराणां न हि जातु विघ्नाः
समाधिभेदप्रभवो भवन्ति ॥ ४० ॥

जो जितेन्द्रिय हैं, अर्थात् जिन्होंने मन (आदि इन्द्रियों) का दमन कर लिया है उनकी समाधि (या निष्ठा) को विघ्नसमूह कदापि विचलित नहीं कर सकते ॥ ४० ॥

(८१)

नहीश्वरव्याहृतयः कदाचित्
पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम् ॥ ६३ ॥

ईश्वरों (अलौकिक शक्तिशालियों) के वाक्य कभी मिथ्या नहीं होते ॥ ६३ ॥

चतुर्थ सर्ग

(८२)

स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो
विवृतद्वारमिवोपजायते ॥ २६ ॥

स्वजन को देखकर (दुखिया के) दुःख का जैसे द्वार खुल जाता है, ऐसा वह उमड़ पड़ता है ॥ २६ ॥

(८३)

दयितास्वनवस्थितं नृणां
न खलु प्रेम सुहृज्जने ॥ २८ ॥

पुरुषों में स्त्री का प्रेम चाहे न भी रहे परन्तु मित्र का स्नेह कभी नहीं मिटता ॥ २८ ॥

तात्पर्य यह कि स्त्रियों के प्रति पुरुषों का जो प्रेम होता है वह किसी कारण से स्थिर नहीं भी रह सकता। किन्तु मित्रों के प्रति पुरुषों का जो प्रेम होता है वह सदा वैसा ही बना रहता है।

(८४)

अनपायिनि संशयद्रुमे
गजभग्ने पतनाय वल्लरी ॥ ३१ ॥

आपत्तिशून्य वृक्ष के सहारे रहनेवाली लता भी उस समय ज़मीन में लोटने लगती है जब कोई हाथी आकर उस पेड़ को उखाड़ डालता है ॥ ३१ ॥

(इस वाक्यांश में कालिदास ने विधवा स्त्री की शोचनीय दशा का निदर्शन कराया है।)

(८४)

शशिना सह याति कौमुदी
सह मेघेन तडित्प्रलीयते ।
प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति
प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि ॥ ३३ ॥

चाँदनी चन्द्रमा के साथ ही अस्त हो जाती है; मेघ के साथ ही बिजली भी लीन हो जाती है। स्त्रियों की गति पति ही है—इस बात को जड़ वस्तुओं ने भी सिद्ध कर दिखाया है ॥ ३३ ॥

तात्पर्य यह कि स्त्री को पति का अनुगमन करना चाहिए, यह केवल शास्त्र की आज्ञा ही नहीं है; उसके उदाहरण जड़ जीवों मे भी पाये जाते हैं।

(८६)

रविपीतजला तपात्यये
पुनरोघेन हि युज्यते नदी ॥ ४४ ॥

सूर्य-किरणों से सूखी हुई नदी गर्मी के बाद फिर जलराशि से परिपूर्ण हो जाती है ॥ ४४ ॥

तात्पर्य यह कि दुःख के बाद सुख का मिलना स्वाभाविक ही है।

पञ्चम सर्ग

(८७)

प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ॥ १ ॥

सौन्दर्य की सफलता प्रेमी से प्रेम पाने ही मे होती है ॥ १ ॥

(८८)

पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं
शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः ॥ ४ ॥

कोमल सिरिस (मौलसिरी) का फूल भौंरे के भार को सह सकता है; मगर पत्ती के बोझ को नहीं ॥ ४ ॥

तात्पर्य यह कि सुकुमार लोग कठिन तपस्या (शारीरिक कष्ट) नहीं कर सकते।

(८९)

क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः
पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ॥ ५ ॥

इष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए दृढ़ निश्चयवाले मन को और निम्नगामी जल की गति को कौन फिरा सकता है ? ॥ ५ ॥

(४०)

न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं
सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते ॥ ६ ॥

केवल भ्रमरों के झुण्ड से ही नहीं, सेवार के साथ भी कमल का फूल सुशोभित होता है ॥ ६ ॥

तात्पर्य यह कि जिसमें सच्चा सौन्दर्य है वह असुन्दर वस्तु के साथ भी सुन्दर जान पड़ता है।

(४१)

न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते ॥ १६ ॥

धर्मवृद्ध (धर्माचरण से महत्त्व को प्राप्त) लोगों की अवस्था नहीं देखी जाती ॥ १६ ॥

(४२)

भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां
वपुर्विशेषेष्वतिगौरवा क्रियाः ॥ ३१ ॥

साधुजन समदर्शी होने पर भी विशेष आकार-प्रकार के लोगों के प्रति अधिक सम्मान प्रकट करते हैं ॥ ३१ ॥

(४३)

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ॥ ३३ ॥

धर्म करने का पहला साधन (सामग्री या उपाय) शरीर ही है ॥ ३३ ॥

तात्पर्य यह कि धर्मात्मा को शरीर-रक्षा पर पहले दृष्टि रखनी चाहिए। क्योंकि अगर शरीर अस्वस्थ होगा तो फिर धर्म के नियमों का पालन नहीं किया जा सकेगा।

(१४)

* * * सङ्गतं

मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते ॥ ३९ ॥

पण्डितों का कहना है कि परस्पर सात बातें होने से (या सात क़दम एक साथ चलने से) ही सज्जनों मे मित्रता हो जाती है ॥ ३९ ॥

(१५)

* * * क करं

प्रसारयेत्पन्नगरत्नसूचये ॥ ४३ ॥

विषधर नाग के सिर की मणि लेने के लिए कौन हाथ बढ़ाने का साहस करेगा? ॥ ४३ ॥

मतलब यह कि प्रतापी और तेजस्वी यदि अपनी सम्पत्ति को सुरक्षित रक्खे तो फिर कोई उस पर हाथ सफ़ा करने का साहस नहीं कर सकता।

(१६)

वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका

विभावरी यद्यरुणाय कल्पते ॥ ४४ ॥

चन्द्रमा और तारागण से परिपूर्ण रात्रि कहीं सन्ध्याकाल (शुरू शाम) में ही अरुणोदय (प्रातःकाल की ललाई, जो

सूर्य-उदय होने के पहले ही पूर्व दिशा मे छिटक जाती है) के योग्य हो जाती है ? ॥ ४४ ॥

मतलब यह कि अवस्था के अनुसार सब सोहता है। जवानी में बूढ़ों का पहनावा (या बुढ़ापे में जवानी का पहनावा) भला नहीं लगता।

(६७)

न रत्नमन्विष्यति
मृग्यते हि तत् ॥ ४५ ॥

रत्न किसी को नहीं खोजता, रत्न को ही सब खोजते हैं ॥ ४५ ॥

मतलब यह कि योग्य आदमी को अपना आदर कराने की ज़रूरत नहीं होती, लोग आप ही उसका आदर करते हैं।

(६८)

मनोरथानामगतिर्न विद्यते ॥ ६४ ॥

ऐसी कोई जगह या चीज़ नहीं है जहाँ मनुष्य के मनोरथ न जा सकें ॥ ६४ ॥

(६९)

अपेक्ष्यते साधुजनेन वैदिकी
श्मशानशूलस्य न यूपसत्क्रिया ॥ ७३ ॥

कोई भी विद्वान् वैदिक यज्ञ-स्तम्भ के समान मसान में गड़ी हुई 'सूली' के काठ की पूजा न करेगा ॥ ७३ ॥

तात्पर्य यह कि सुपात्र (मनुष्य) की तरह कुपात्र की पूजा नहीं हो सकती, चाहे वे एक ही वंश के क्यों न हो।

(१००)

अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुक
द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् ॥ ७५ ॥

जो लोग नीच और मूर्ख हैं वे ही महात्मा लोगों के अलौकिक, अचिन्त्य चरित्रों की निन्दा किया करते हैं ॥ ७५ ॥

(१०१)

न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपुः ॥ ७८ ॥

सारा संसार ही जिसकी मूर्त्ति है उसके आकार का ठीक निश्चय कौन कर सकता है? ॥ ७८ ॥

मतलब यह कि यह विचित्र ब्रह्माण्ड भर जब परमेश्वर का रूप है तब उस 'अनेकरूपरूपाय' का कोई एक रूप मानकर यह कहना कि 'यही उसका रूप है' अनुचित और भ्रम है।

(१०२)

न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते ॥ ८२ ॥

मनमाना करनेवाला लोक-निन्दा से नहीं डरता ॥ ८२ ॥

(१०३)

न केवलं यो महतोऽपभाषते
शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक् ॥ ८३ ॥

बड़े लोगों को बुरा कहनेवाला ही नहीं, बल्कि उसके उन शब्दों को सुननेवाला भी पापभागी होता है ॥ ८३ ॥

(१०४)

क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते ॥ ८६ ॥

किसी काम में परिश्रम करो और अगर वह सफल हो गया तो फिर सब थकावट दूर होकर नया बल आ जाता है ॥ ८६ ॥

षष्ठ सर्ग

(१०५)

स्त्रीपुमानित्यनास्थैषा
वृत्तं हि महितं सताम् ॥ १२ ॥

स्त्री और पुरुष का भेदभाव रखना भ्रम है, सज्जनों की दृष्टि मे चरित्र ही पूजनीय है ॥ १२ ॥

अर्थात् सज्जन लोग, स्त्री है या पुरुष, यह नहीं देखते, वे गुणों का ही आदर करते हैं।

(१०६)

क्रियाणां खलु धर्म्याणां
सत्पत्न्यो मूलकारणम् ॥ १३ ॥

मनुष्यों के धर्माचरण का मूल-कारण अच्छी स्त्रियाँ ही होती हैं ॥ १३ ॥

(१०७)

प्रायः प्रत्ययमाधत्ते स्वगुणेषूत्तमादरः ॥ २० ॥

बड़े लोगों द्वारा (अपना) आदर होते देख प्रायः लोगों को अपने गुणों पर विश्वास होता है ॥ २० ॥

मतलब यह कि वही यथार्थ गुणी है जिसका आदर उत्तम पुरुष करते हैं ।

(१०८)

विक्रियायै न कल्पन्ते सम्बन्धा सदनुष्ठिता ॥ २६ ॥

सज्जनों के जोड़े हुए सम्बन्धों का परिणाम कष्ट देने-वाला नहीं होता ॥ २९ ॥

(१०९)

विनियोगप्रसादा हि
किङ्करा प्रभविष्णुषु ॥ ६२ ॥

स्वामी की कोई आज्ञा पाकर ही सेवक लोग अपने को कृतार्थ मानते हैं ॥ ६२ ॥

(११०)

अशोच्या हि पितुः कन्या
सद्भर्तृप्रतिपादिता ॥ ७९ ॥

सत्पात्र वर को कन्या देने से फिर माता-पिता को उस (कन्या) के लिए कुछ शोच नहीं करना पड़ता ॥ ७९ ॥

(१११)

प्रायेण गृहिणीनेत्राः

कन्यार्थेषु कुटुम्बिनः ॥ ८५ ॥

कुटुम्बी (गृहस्थ) लोगों को, कन्या के मामले में प्रायः स्त्री की ही सलाह से काम करना पड़ता है ॥ ८५ ॥

(११२)

भवन्त्यव्यभिचारिण्यो

भर्तुरिष्टे पतिव्रताः ॥ ८६ ॥

पतिव्रता स्त्रियों का नियम है कि वे (कभी) अपने स्वामी की इच्छा के विरुद्ध अभिलाषा नहीं करती ॥ ८६ ॥

सप्तम सर्ग

(११३)

स्त्रीणां प्रियालोकफलोहि वेशः ॥ २२ ॥

स्त्रियों का शृङ्गार उनके प्रिय जन के देखने से ही सफल समझा जाता है ॥ २२ ॥

(११४)

कालप्रयुक्ता खलु कार्य्यविद्भि-

र्विज्ञापना भर्तृषु सिद्धिमेति ॥ २३ ॥

काम निकालने का ढङ्ग जाननेवाले लोग ठीक समय पर प्रभुओं के निकट जो प्रार्थना करते हैं वह अवश्य ही पूरी होती है ॥ २२ ॥

अष्टम सर्ग

(११५)

महत्त्वमसतां हृतान्तरम् ॥ ५७ ॥

दुष्ट नीच लोग प्रभुता पाकर ऊँच-नीच (या भले-बुरे) के अन्तर को मिटा देते हैं ॥ ५७ ॥

(हिन्दी में भी इसी मेल की कहावत है कि "चौपट्ट नगरी, अनबूझ राजा। टका सेर भाजी, टका सेर खाजा ॥")

(११६)

विक्रिया न खलु कालदोषजा
निर्मलप्रकृतिसुस्थिरोदया ॥ ६५ ॥

समय के दोष से उत्पन्न होनेवाला विकार साफ़ स्वभाव-वाले सज्जनों मे अधिक देर तक नहीं ठहरता ॥ ६५ ॥

(११७)

उन्नतेषु शशिनः प्रभा स्थिता
निम्नसंश्रयपरं निशातम ॥
नूनमात्मसदृशी प्रकल्पिता
वेधसैव गुणदोषयोर्गति ॥ ६६ ॥

ऊँचे (वृक्षों की चोटी, मकानों के ऊपरी भाग इत्यादि) पर चाँदनी है, और रात्रि का अन्धकार नीचे पड़ा हुआ है। इससे जान पड़ता है कि विधाता ने ही गुण और दोष की गति उनकी योग्यता के अनुसार बनाई है ॥ ६६ ॥

दशम सर्ग

(११८)

स्तोत्रं कस्य न तुष्टये ॥ ६ ॥

स्तुति (प्रशंसा) सुनकर कौन ख़ुश नहीं होता ? ॥ ६ ॥

(११६)

अर्थेष्ववश्यकार्येषु
सिद्धये चिप्रकारिता ॥ २४ ॥

अवश्य करने के कामों में फुर्ती करने से अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है ॥ २४ ॥

एकादश सर्ग

(१२०)

रत्नाकरे युज्यत एव रत्नम् ॥ ११ ॥

रत्नाकर (समुद्र) में ही रत्नों का होना सर्वथा सम्भव है ॥ ११ ॥

तात्पर्य यह कि उत्तम वस्तु श्रेष्ठ स्थान में ही अधिकता से पाई जाती है ।

द्वादश सर्ग

(१२१)

प्रभुप्रसादो हि मुदे न कस्य ॥ २२ ॥

मालिक की प्रसन्नता किसको आनन्द नहीं देती ? ॥३२॥

(१२२)

ध्रुवमभिमते को वा पूर्णे मुदा न हि माद्यति ॥ ५८ ॥

अपनी इच्छा पूर्ण होने पर कौन आनन्द में मग्न नहीं होता ? ॥ ५८ ॥

पञ्चदश सर्ग

(१२३)

* * * महतां वृथा भवे-
दसद्ग्रहान्धस्य हितोपदेशना ॥ २६ ॥

असत् आग्रह (हठ) से अन्धे हो रहे मनुष्य को महापुरुषों का हित की बात बताना वृथा ही होता है। (क्योंकि वह उनकी नहीं सुनता, अपने ही मन की करता है) ॥ २६ ॥

मेघदूत

पूर्वमेघ

(१२४)

कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ ५ ॥

जो लोग कामी (या काम के क़ाबू में) हो जाते हैं उन्हें, स्वभावतः जड़ और चेतन का ज्ञान नहीं रहता ॥ ५ ॥

(१२५)

याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ ६ ॥

(अपने से) अधिक गुणी (श्रेष्ठ) मनुष्य से की गई प्रार्थना का निष्फल (पूर्ण न) होना भी अच्छा, किन्तु नीच जन से की गई सफल प्रार्थना (भी) नहीं अच्छी! ॥ ६ ॥

क्योंकि उत्तम पुरुष अगर प्रार्थना पूर्ण न कर सकेगा तो वह प्रार्थी की हँसी भी नहीं उड़ावेगा; किन्तु नीच मनुष्य यदि प्रार्थना पूर्ण भी कर देगा तो पचास जगह कहेगा कि अमुक मनुष्य से मैंने ऐसा सलूक किया—जिससे प्रार्थी की आँख सदा सर्वत्र नीची रहेगी।

(१२६)

आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥ १० ॥

स्त्रियों का प्रेममय हृदय फूल के समान होता है, विरह की दशा मे (मिलने की) आशा का बन्धन ही उसको शीघ्र-पतन से बचाये रहता है ॥ १० ॥

(१२७)

न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः ॥ १७ ॥

क्षुद्र (छोटा) मित्र भी, यदि उसका उपकारी मित्र (किसी तरह का) आश्रय पाने के लिए आता है तो वह उसके किये पहले उपकारो को याद कर उससे मुँह नहीं मोड़ता, तब ऊँचे (विचार के) मित्रों के लिए तो कहना ही क्या है! ॥ १७ ॥

(१२८)

सद्भावार्द्रः फलति न चिरेणोपकारो महत्सु ॥ १६ ॥

बड़े लोगो का कुछ उपकार करो तो वह उपकार का अंकुर उनकी सज्जनता के जल से सिंचकर, बहुत शीघ्र फल देता है ॥ १६ ॥

(१२६)

रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥ २० ॥

भीतर के खाली सब हलके (ओछे) होते हैं, पूर्ण ही गौरवशाली (भारी) हुआ करते हैं ॥ २० ॥

तात्पर्य यह कि जिसमे कुछ तत्त्व नहीं है वह लाख बने, लेकिन उसे लोग चुटकियों मे उड़ा देते हैं, और जो विद्वान्

या सम्पन्न है उसका गौरव सब जगह होता है, उसे कोई नहीं हिला सकता।

(१३०)

मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥ ३९ ॥

मित्र के किसी काम को कर देने का वादा करके कभी कोई उसमे ढिलाई नहीं करता ॥ ३९ ॥

(१३१)

आपन्नार्ति प्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् ॥ ५४ ॥

अच्छे लोग शरणागत का दुःख दूर करने मे ही अपनी सम्पत्ति या वैभव की सफलता मानते हैं ॥ ५४ ॥

(१३२)

के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः ॥ ५५ ॥

कोई कार्य करने के पहले उसका परिणाम सोचे विना उद्योग करनेवाले लोग सफलमनोरथ तो होते ही नहीं, बल्कि उन्हें हार और तिरस्कार से लज्जित भी होना पड़ता है ॥ ५५ ॥

उत्तरमेघ

(१३३)

सूर्य्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् ॥ १९ ॥

सूर्य के अस्त हो जाने पर कमल अपनी शोभा को नहीं बनाये रख सकता ॥ १९ ॥

तात्पर्य यह कि मालिक के पीछे उसकी सम्पत्ति, देखरेख न होने के कारण, नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है।

(१३४)

प्राय सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥ ३२ ॥

प्रायः सभी कोमल—आर्द्र—हृदयवाले लोग दया-परिपूर्ण हुआ करते हैं ॥ ३२ ॥

(१३५)

कान्तोदन्त सुहृदुपनत सङ्गमात् किञ्चिदून. ॥ ३६ ॥

मित्र के द्वारा प्राप्त अपने प्यारे का सन्देसा प्रियमिलन से कुछ ही कम होता है ॥ ३६ ॥

(१३६)

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥ ४६ ॥

संसार मे सदा सुखी या सदा दुखी कोई नही रहता। मनुष्य की दशा गाड़ी के पहिये के समान कभी ऊपर चढ़ जाती और कभी नीचे गिर जाती है ॥ ४६ ॥

(१३७)

स्नेहानाहु किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसा. प्रेमराशीभवन्ति ॥ ५२ ॥

कुछ लोग कहते हैं कि वियोग में स्नेह कम हो जाता है, किन्तु यह कहना ठीक नहीं। क्योंकि उस समय भोग के

अभाव से, प्रियजन के ऊपर, अनुराग जमा हो-होकर "प्रेम की राशि" बन जाता है ॥ ५२ ॥

तात्पर्य यह कि जो चीज़ ख़र्च में लाई जाती है वही चुकती है, और जिसका ख़र्च नहीं होता वह जमा होती रहती है—इसी नियम के अनुसार बिछोह के दिनों में भोग न होने के कारण स्नेह का ख़र्च नहीं होता और इसी से वह दिन-दिन जमा होकर और भी गाढ़ा होता जाता है।

(१२८)

प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ॥ ५४ ॥

सज्जन लोग मित्र की प्रार्थना का उत्तर, बातों से नहीं, वरन् कार्य से ही देते हैं ॥ ५४ ॥

मालविकाग्निमित्र

प्रथम अंक

(१२९)

पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ॥
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते
मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥ ६ ॥

जितने पुराने काव्य हैं वे सभी अच्छे नहीं। किसी काव्य को नवीन जानकर दूषित या हीन कहना भी ठीक नहीं।

जो समझदार हैं वे परीक्षा करके अच्छे और बुरे का निर्णय करते हैं। जो लोग दूसरों के विश्वास पर आँख मूँदकर निश्चय कर बैठते हैं वे मूढ़ हैं ॥ ६ ॥

(१४०)

त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम् ॥ २८ ॥

'नाटक' के अभिनय मे सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी लोगों के अनेक-रसमय विचित्र चरित्र दिखाये जाते हैं। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न रुचिवाले अनेक लोग एक नाटक से ही सन्तुष्ट किये जा सकते हैं (नाटक की यही श्रेष्ठता और विशेषता है) ॥ २८ ॥

(१४१)

पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः ।
जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य ॥ ३५ ॥

जैसे बादल की बूँद सीप में पड़ने से मोती बन जाती है वैसे ही सिखलानेवाले का गुण सुपात्र सीखनेवाले में उत्तम रूप धारण कर शिक्षक को भी यशस्वी बनाता है ॥ ३५ ॥

मतलब यह कि अच्छा विद्यार्थी गुरु से पाई हुई विद्या को अपनी योग्यता से और भी बढ़ा लेता है, जिससे उसके गुरु की भी प्रशंसा होती है।

(१४२)

अचिराधिष्ठितराज्य शत्रुः प्रकृतिष्वरूढ़मूलत्वात् ।
नवसंरोपणशिथिलः तरुरिव सुकरः समुद्धर्तुम् ॥ ४७ ॥

नये रोपे हुए वृक्ष की जड़ शिथिल रहती है और इसी से वह सहज ही उखाड़ा जा सकता है। इसी तरह जो शत्रु हाल ही में राज्यासन पर बैठा है, और इसी कारण प्रजा के हृदय में जिसकी जड़ नहीं जमी है उसे भी अनायास उखाड़ डाला जा सकता है ॥ ४७ ॥

(१४३)

सप्रतिबन्धं कार्यं प्रभुरधिगन्तुं सहायवानेव ।
दृश्यं तमसि न पश्यति दीपेन विना सचक्षुरपि ॥ ५८ ॥

रुकावटवाले काम में सहायक के बिना सिद्धि नहीं मिलती। देखो, आँखों के रहते भी, अन्धकार में दीपक के बिना कुछ नहीं दिखाई पड़ता ॥ ५८ ॥

(१४४)

शिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था
सङ्क्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता ।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां
धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव ॥ १०८ ॥

कोई शिक्षक ऐसे होते हैं जो आप, स्वयं, उस काम को अच्छी तरह करके दिखा सकते हैं। और कोई ऐसे होते हैं जो विद्यार्थी को सिखाकर उसी के द्वारा उस काम को अच्छा

कर दिखा सकते हैं। किन्तु जिस शिक्षक में ये दोनों बातें हैं, अर्थात् जो आप भी निपुण (होशियार) है और विद्यार्थियों को भी अपनी ही तरह निपुण बना सकता है उसे तो सब शिक्षकों में श्रेष्ठ मानना ही चाहिए ॥ १०८ ॥

(१४५)

यस्योद्यमः केवलजीविकायै
त ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति ॥ ११६ ॥

जो केवल जीविका के लिए शास्त्रों का अभ्यास करता है उसे लोग ज्ञान का बेपारी बनिया कहते हैं ॥ ११६ ॥

(१४६)

प्राय. समानविद्या
परस्परयश पुरोभागा ॥ १४३ ॥

जो किसी विद्या में बराबरी का दावा रखते हैं वे प्रायः एक दूसरे के छिद्र देखा करते हैं। कारण यही है कि एक दूसरे को अपने बराबर होने देना नहीं चाहता ॥ १४३ ॥

द्वितीय अक

(१४७)

मन्दोऽप्यमन्दतामेति ससर्गेण विपश्चितः ।
पङ्कच्छिद फलस्येव निकषेणाविल पय ॥ २० ॥

रीठे के फल मलने से जैसा गँदला पानी साफ़ हो जाता है उसी तरह बुद्धिमान् विद्वान् के संसर्ग (सोहबत) से बुरा भी अच्छा बन जाता है ॥ २० ॥

(१४८)

उपदेशं विदुः शुद्धम् सन्तस्तमुपदेशिनं ।
श्यामायते न विद्वत्सु यः काञ्चनमिवाग्निषु ॥ २६ ॥

उपदेशक के उसी उपदेश को सज्जन लोग शुद्ध समझते हैं जो अग्नि मे पड़े हुए सुवर्ण की तरह विद्वानों के समाज में मलिन न हो, बल्कि और भी चमक उठे ॥ २६ ॥

तृतीय अंक

(१४९)

* * * तत्वावबोधैकफलो न तर्कः ॥ ४९ ॥

तर्क (बहस) से ही तत्त्व का निर्णय होता हो—यह बात नही है ॥ ४६ ॥

चतुर्थ अंक

(१५०)

छेदो दंशस्य दाहो वा क्षतस्यारक्तमोक्षणम् ।
एतानि दष्टमात्राणामायुष्याः प्रतिपत्तयः ॥ ४९ ॥

जहाँ सर्प ने डस लिया हो उस अङ्ग को तुरन्त काट डालना, जला (दाग) देना, या वहाँ का ख़ून निकाल देना ही मृत्यु से बचने के उपाय हैं॥ ४९ ॥

(१५१)

प्रतिपक्षेणापि पतिं सेवन्ते भर्तृसेवना नार्यः।
अन्यसरितामपि जलम् समुद्रगाः प्रापयन्त्युदधिम् ॥ १५० ॥

पतिव्रता स्त्रियाँ सौत के साथ भी पति की सेवा करती हैं, देखो गंगा आदि नदियाँ अन्य नदियों (के जल) को साथ लेकर समुद्र से मिलने जाती हैं॥ १५० ॥

विक्रमोर्वशी

प्रथम अंक

(१५२)

वसुधाधरकन्दराविसर्पी
प्रतिशब्दोपि हरेर्हिनस्ति नागान्॥

पर्वत की कन्दरा मे गूँज रही सिंह के गरजने की प्रतिध्वनि भी गजराजों को गिरा देती है।

मतलब यह कि पराक्रमी प्रभु के अनुचर भी प्रभु के प्रताप से शत्रुओं का नाश कर सकते हैं।

द्वितीय अंक

(१५३)

तप्तेन तप्तमयसा घटनाय योग्यम् ॥

तपे हुए लोहे से ही तपे लोहे का 'जोड़' पक्का होता है। मतलब यह कि दोनों में स्नेह का जोश होने से ही दृढ़ मेल (मैत्री) होता है।

तृतीय अंक

(१५४)

सर्वः कल्पे वयसि यतते लब्धुमर्थान्कुटुम्बी
पश्चा त्पुत्रैरुपहितभरः कल्पते विश्रमाय ॥

हर एक विज्ञ कुटुम्बी मनुष्य नई उमर (जवानी) में कमाने की कोशिश करता है और पीछे (बुढ़ापे मे) पुत्रों पर गृहस्थी का भार डालकर आप विश्राम लेता है।

(१५५)

यदेवोपनतं दुःखं सुखं तद्धि रसान्तरम् ।
निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषतः ॥

जिस वस्तु से दुःख मिलता है वही वस्तु दूसरे रूप में सुखदायक भी हो जाती है। देखो, धूप मे तपे हुए पथिक को वृक्ष की छाँह अधिक सुख देनेवाली हुआ करती है।

धूप भी सूर्य की छाया है, किन्तु वही (छाया) वृक्ष की छाया होने से दुःख की जगह सुख देती है।

चतुर्थ अङ्क

(१२६)

राजा कालस्य कारणम् ॥

राजा ही 'समय' का कारण है।

तात्पर्य यह कि राजा जैसा चाहे वैसा ही समय (ज़माना) हो सकता है।

(१२७)

महदपि परदुःखं शीतलं सम्यगाहुः ॥

दूसरे के भारी दु.ख को भी साधारणतः लोग साधारण ही समझा करते हैं। (इसी तरह की एक कहावत हिन्दी में भी है—"जाके पायँ न गई बेंवाई। सो का जानै पीर पराई")।

(१२८)

स्वार्थात्सतां गुरुतरा प्रणयिक्रियैव।

सज्जनों की दृष्टि में मित्र का काम अपने काम से भी बढ़ कर होता है।

पञ्चम अंक

(१५९)

न हि सुलभवियोगा कर्तुमात्मप्रियाणि
प्रभवति परवत्ता * * * ॥

पराधीन मनुष्य का विरह सदा सहजसिद्ध सुलभ है, क्योंकि वह अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकता। (कहा भी है—"पराधीन सपने सुख नाही") ।

(१६०)

शमयति गजानन्यान् गन्धद्विपः कलभोऽपि सन्
प्रभवतितरां वेगोदग्रं भुजङ्गशिशोर्विषम् ॥
भुवमधिपतिर्बालावस्थोप्यलं परिरक्षितुं
न खलु वयसा जात्यैवायं स्वकार्य्यसहो गुणः ॥

मदमस्त हाथी का बच्चा भी और हाथियों को परास्त कर सकता है; साँप के बच्चे का भी विष अत्यन्त उग्र हुआ करता है; राजकुमार बालक होने पर भी अच्छी तरह पृथ्वी का शासन और पालन कर सकता है, अतएव कहना पड़ेगा कि अपना काम करने की शक्ति अवस्था पर नहीं, वरन् जाति पर निर्भर है।

(१६१)

परस्परविरोधिन्योरेकसंश्रयदुर्लभम् ।
सङ्गतं श्री-सरस्वत्योर्भूयादुद्भूतये सताम् ॥

लक्ष्मी और सरस्वती का वैर चिरकाल से चला आता है, इन दोनों का एक ही पात्र में होना दुर्लभ समझा जाता है। ईश्वर से प्रार्थना है कि सज्जनों के अभ्युदय और मङ्गल के लिए यह लक्ष्मी और सरस्वती का दुर्लभ सङ्गम भी संसार में सुलभ हो।

अभिज्ञान-शाकुन्तल

प्रथम अंक

(१६२)

अपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ॥ २ ॥

किसी कार्य के करने की चातुरी को तब तक मैं उत्तम नहीं मानता, जब तक उसे देखकर विद्वान् लोग सन्तुष्ट न हों। सुशिक्षित (उस कार्य मे निपुण) लोगों को भी अपने ऊपर विश्वास नहीं होता ॥ २ ॥

(१६३)

* * भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ॥ ३७ ॥

होनहार के द्वार (जरिये) सब जगह हुआ करते हैं ॥३७॥

(१६४—१६५)

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ॥

* * * *

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥ ४७ ॥

सेवार के बीच मे भी कमल की शोभा होती है, चन्द्रमा के बीच का चिह्न मलिन (श्याम) होने पर भी (चन्द्रमा की) शोभा को बढ़ाता है। * * * * *

जो स्वभाव-सुन्दर हैं उनके लिए, कौन ऐसी वस्तु है जो आभूषण नहीं बन जाती ? ॥ ४७ ॥

तात्पर्य यह कि जिसमें सच्चा सौन्दर्य है उसके अङ्ग में, चाहे जो वह पहन-ओढ़ ले, सब भला लगता है।

(१६६)

सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु
प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥ ६२ ॥

शुद्ध हृदय और आचरणवाले लोगों की चित्तवृत्ति ही सन्देह-युक्त विषय के निर्णय मे प्रमाण-स्वरूप हुआ करती है ॥ ६२ ॥

अर्थात् ऐसे सज्जनों का ख़याल कभी अन्यथा या मिथ्या नहीं होता।

(१६७)

न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ॥ १०३ ॥

बिजली कभी पृथ्वीतल से नहीं प्रकट होती ॥ १०३ ॥

तात्पर्य यह कि स्वर्गीय सौन्दर्य पार्थिव (पृथ्वी के) पदार्थ से नहीं निकलता।

द्वितीय अंक

(१६८)

– – – कामी स्वतां पश्यति ॥ ३ ॥

कामी पुरुष, स्त्रियों की हरकतों को अपने ही प्रति समझता है ॥ ३ ॥

(१६९)

शमप्रधानेषु तपोवनेषु
गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः ॥
स्पर्शानुकूला अपि सूर्यकान्ता-
स्ते ह्यन्यतेजोभिभवाद्दहन्ति ॥ ३४ ॥

शान्तिप्रधान ऋषियों के आश्रम मे जलाने की शक्ति रखनेवाला तेज छिपा रहता है। देखो, सूर्यकान्त मणि बहुत ही शीतल होती है, लेकिन वह दूसरे (सूर्य) के तेज को नहीं सह सकती। सूर्य का तेज पड़ते ही जला देती है ॥ ३४ ॥

(१७०)

लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं
श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत् ॥ ५४ ॥

लक्ष्मी को चाहनेवाले के लिए लक्ष्मी चाहे दुर्लभ भी हो, लेकिन लक्ष्मी जिसे चाहती हो वह लक्ष्मी के लिए कभी दुर्लभ नहीं हो सकता ॥ ५४ ॥

———

तृतीय अंक

(१७१)

ननु कमलस्य मधुकरः सन्तुष्यति गन्धमात्रेण ॥ १६२ ॥

भ्रमर कमल की गन्ध से ही सन्तोष कर लेता है ॥१६२॥

अर्थात् बहुत दिन साथ रहने का अवकाश न होने पर भी मित्र से दो-चार बातें कर लेने से ही मित्र को सन्तोष हो जाता है।

चतुर्थ अंक

(१७२)

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-
माविष्कृतारुणपुरस्सर एकतोऽर्कः ॥
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवैष दशान्तरेषु ॥ ३३ ॥

एक तरफ़ तो चन्द्रमा नीचे गिर रहा है और दूसरी तरफ़ अरुण की लाली प्रकट करते हुए सूर्य नारायण ऊपर चढ़ रहे हैं। सूर्य-चन्द्र के एक साथ पतन और उदय को दिखला-कर माना विधाता संसार को यह शिक्षा दे रहे हैं कि सब दिन बराबर नहीं जाते ॥ ३३ ॥

(१७३)

पादन्यासं क्षितिधरगुरोर्मूर्ध्नि कृत्वा सुमेरोः
क्रान्तं येन क्षपिततमसा मध्यमं धाम विष्णोः ॥

सोऽयं चन्द्रः पतति गगनादल्पशेषैर्मयूखै-
रत्यारूढिर्भवति महतामप्यपभ्रंशहेतु. ॥ ३६ ॥

जो पर्वतराज सुमेरु के सिर पर किरण-रूपी चरण रख-कर अन्धकार को दूर करता हुआ विष्णुपद अर्थात् आकाश पर चढ़ गया था वही यह चन्द्रमा लुढ़कता-लुढ़कता नीचे गिर रहा है। सच है, जो लोग अपनी शक्ति से बढ़कर काम करने की अभिलाषा करके दुर्लभ पद पर चढ़ने का दुस्साहस करते हैं, वे चाहे जितने बड़े हों, उनका अन्त को अवश्य ही अधःपतन होता है ॥ ३६ ॥

(१७४)

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मास्म प्रतीपं गम. ॥
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥१२६॥

बड़े-बूढ़ों की सेवा करो, अपनी सौतों को प्रिय सखी समझो, स्वामी अगर कभी कुछ तिरस्कार भी करे तो कभी क्रोध करके उससे विरोध न बढ़ाओ, नौकर-चाकरों से सहानु-भूति रक्खो और भोग-विलास तथा अभ्युदय प्राप्त होने पर अहङ्कार न करो। ऐसा करनेवाली स्त्रियाँ ही 'गृहिणी' के पद को पाती हैं। और जो इसके विपरीत काम करती हैं वे स्त्रियाँ कुल का कण्टक होती हैं ॥ १२६ ॥

पञ्चम अंक

(१७५)

क्षणात् प्रबोधमायाति तमसा लङ्घ्यते पुन ।
निर्वास्यत. प्रदीपस्य शिखेव जरतो मति ॥ ४ ॥

बुड्ढे मनुष्य की बुद्धि बुझते हुए दीपक की ज्योति कभी जग उठती है और कभी मैली पड़ जाती

(१७६)

भानुः सकृद्युक्ततुरंग एव
रात्रिन्दिवं गन्धवहः प्रयाति ॥
शेष सदैवाहितभूमिभारः
षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः ॥ ६ ॥

सूर्यदेव एक ही बार के जुते रथ पर चढ़कर अब तक जगत् में घूम रहे हैं, हवा दिन-रात डोला करती है और शेष-जी सदैव अपने शिर पर पृथ्वी का भार धारण किये हुए हैं, प्रजा से उसकी कमाई का छठा हिस्सा 'कर' लेनेवाले राजा का भी यही धर्म, अर्थात् कर्त्तव्य, है ॥ ६ ॥

(१७७)

औत्सुक्यमात्रमवसादयति प्रतिष्ठा
क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव ॥
नातिश्रमापनयनाय यथा श्रमाय
राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम् ॥ ७ ॥

राजपद मिलने से केवल (राजा बनने की) हौस मिट जाती है, किन्तु मिले हुए राज्य को पालने मे दिन-दिन कष्ट ही मिलते रहते हैं। अपने हाथ में लेकर लगाई गई छवरी के समान राज्य से सुख तो थोड़ा ही मिलता है, लेकिन परिश्रम बड़ा करना पड़ता है ॥ ७ ॥

(१७८)

अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् ॥ ८ ॥

देखो, कड़ी धूप को अपने शिर लेकर ये वृक्ष अपनी छाया से पास आये हुए आश्रित लोगों के ताप को हरते हैं ॥ ८ ॥

मतलब यह कि सज्जन लोग आप कष्ट उठाकर भी दूसरों के—शरणागतों के—कष्ट को दूर करते हैं।

(१७९)

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दा-
न्पर्युत्सुको भवति यत् सुखितोपि जन्तु. ॥
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥ २९ ॥

रम्य रूप और मीठे बोल सुनकर सुखी जीव भी उनके लिए उत्कण्ठित होते हैं, इसका कारण यही तो नहीं है कि उस रूप और बोली से उसका पहले का कोई सम्बन्ध रहता है, जिसे वह इस जन्म मे भूल जाता है? मेरी समझ मे तो

पूर्वानुराग ही इसका कारण है कि उसी रूप और बोली को देख-सुनकर मनुष्य मोहित हो जाता है ॥ २५ ॥

(१८०)

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः
नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः ॥
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥ ४३ ॥

फल पाकर वृक्ष झुक जाते हैं, पानी-भरे बादल भी झुक आते हैं। इसी तरह अच्छे पुरुष भी सम्पन्न होने पर नम्रता दिखाते हैं। सच तो यह है कि परोपकार करनेवालों का स्वभाव ही ऐसा होता है ॥ ४३ ॥

(१८१)

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां
जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते ॥
अतः समीपे परिणेतुरेष्यते
प्रियाप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः ॥ ६८ ॥

सधवा स्त्री अगर हमेशा अपने पिता के यहाँ रहती है तो, वह चाहे सती ही क्यों न हो, उसके चरित्र के बारे मे लोग कानाफूसी करने लगते हैं। इसी लिए कन्या के भाई, बाप, वह चाहे पति को प्यारी हो या न हो, उसे उसकी ससुराल में रखने की ही चेष्टा करते हैं ॥ ६८ ॥

(१८७)

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु
संदृश्यते किमुत याः परिबोधवत्यः ॥
प्रागन्तरिक्षगमनात्स्वमपत्यजात-
मन्यैर्द्विजैः परभृतः किल पोषयन्ति ॥ ९९ ॥

सीखी और बुद्धिमती मनुष्य-रमणियों की तो बात ही नहीं, पक्षी जाति की स्त्रियाँ भी बिना सीखे—बिना बुद्धि के—स्वाभाविक चतुर होती हैं। कोकिलाओं को देखो, उनके बच्चे जब तक उड़ने के लायक़ नहीं होते तब तक दूसरे (कौए) से उनको पलवा लेती हैं [कोकिलाओं का क़ायदा है कि वे अण्डे कौए के झोंझ में देती हैं। कौए अपने ही अण्डे समझ कर उनके अण्डों को भी सेते हैं। जब बच्चे परदार होते हैं तो वे उड़कर अपने दल में मिल जाते हैं। कौए और कोयल का रंग तथा आकार प्रायः एक सा होता है] ॥ ९९ ॥

तात्पर्य यह कि स्त्री जाति को चातुरी सीखने की ज़रूरत नहीं, वह स्वाभाविक चतुर हुआ करती है।

(१८८)

आजन्मनः शाठ्यमशिक्षितो य-
स्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य ॥
पराभिसन्धानमधीयते यै-
र्विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाचः ॥ १०० ॥

प्रायः देखा जाता है कि जन्म के सीधे—छल-छन्द न जाननेवाले—लोगों की बात तो अप्रमाण (झूठ) मानी जाती

है और जो लोग दूसरे को छलना भी एक विद्या (गुण) समझे हुए हैं वे सच्चे समझे जाते हैं ॥ १०७ ॥

(१८४)

उपयन्तुर्हि दारेषु प्रभुता विश्वतोमुखी ॥ ११२ ॥

स्त्री के ऊपर स्वामी की प्रभुता सब तरह है ॥ ११२ ॥

(१८५)

कुमुदान्येव शशाङ्कः
सविता बोधयति पङ्कजान्येव ॥
वशिनां हि परपरिग्रह-
संश्लेषपराङ्मुखी वृत्तिः ॥ ११८ ॥

चन्द्रमा केवल कुमुदिनी को ही खिलाता है, और सूर्य केवल कमलिनी को ही जगाते हैं। जितेन्द्रिय लोगों की चित्तवृत्ति सदा पराई स्त्री से विमुख रहती है ॥ ११८ ॥

षष्ठ अंक

(१८६)

रन्ध्रोपपातिनोऽनर्थाः ॥

छिद्र (असावधानता) में ही अनर्थ होते हैं ॥

(१८७)

हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः ॥ २१६ ॥

हंस दूध पी लेता है और उसमें मिले हुए पानी को छोड़ देता है ॥ २१६ ॥

सारांश यह कि विवेकी लोग हर एक बात या वस्तु का सारांश ग्रहण कर लेते हैं, और बुरे अंश को छोड़ देते हैं।

(१८८)

ज्वलति चलितेन्धनोऽग्नि·
विप्रकृता पन्नग फणां कुरुते ॥
तेजस्वी सङ्क्षोभाद्
प्रायः प्रतिपद्यते तेज· ॥ २३१ ॥

ईंधन की लकड़ी चलाने से आग जल उठती है, और छेड़ने से नाग फन उठाता है। तेजस्वी पुरुष क्षोभ को प्राप्त होने पर ही अपना तेज दिखाते हैं ॥ २३१ ॥

सप्तम अंक

(१८९)

सिद्ध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्या
सम्भावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम् ॥
किं प्राभविष्यदरुणास्तमसां वधाय
तञ्चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ॥ ६ ॥

कार्य में नियुक्त भृत्य लोग जो बड़े-बड़े काम कर डालते हैं सो सब उनके प्रभुओं का ही प्रताप है। भला अरुण (प्रातः-काल के समय) अन्धकार का नाश कर सकते थे, अगर सूर्यदेव उनके पृष्ठपोषक न होते ? ॥ ६ ॥

(१६०)

पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते ॥ ४१ ॥

पहले छोड़ी गई भलाई दुःख के रूप में आगे आती है ॥ ४६ ॥

(१६१)

आलक्ष्य दन्तमुकुलाननिमित्तहासै-
रव्यक्तवर्ण रमणीयवचःप्रवृत्तीन् ॥
अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो-
धन्यास्तदङ्गरजसा कलुषीभवन्ति ॥ ७० ॥

अकारण हँसी से कुछ दिखलाई दे रहे दाँतों से मनोहर मुखवाले, और अस्फुट आधे-आधे अक्षरों का उच्चारण कर मन को हरनेवाले, तथा सदा गोद में रहने के लिए उत्सुक बच्चों को लेकर उनके अङ्ग की धूल से अपने शरीर को मलिन करनेवाले लोग धन्य हैं! ॥ ७० ॥

(१६२)

भवनेषु सुधासितेषु पूर्वं
क्षितिरक्षार्थमुषन्ति ये निवासम् ।
नियतैकयतिव्रतानि पश्चात्
तरुमूलानि गृहीभवन्ति तेषाम् ॥ ८५ ॥

जो लोग जवानी में पृथ्वी की रक्षा करने के लिए अमल धवल महलों में रहते हैं वे ही (राजा) लोग बुढ़ापे में मुनिव्रत धारण कर वृक्षमूल को अपना घर बना लेते हैं ॥ ८५ ॥

(१६३)

स्रजमपि शिरस्यन्ध
क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया ॥ १२७ ॥

अन्धा आदमी माला को भी, ऊपर छोड़ने से, साँप समझकर उसे फेंक देता है ॥ १२७ ॥

तात्पर्य यह कि भ्रम या कुसंस्कार के कारण अज्ञानी लोग भलाई को भी बुराई समझकर छोड़ बैठते हैं।

इति